ARYAVART SHODH VIKAS PATRIKA
RNI TITLED NO. UPBBIL04292
RNI REG. NO. UPBBIL/2014/66218 PP. NO.- 189-191
ISSN NO.-2347-2944
Vol.-9, No.-II, Issues-10 YEAR- Dec -2018

अन्त्यजों की आर्थिक स्थिति

डॉ0 निर्मला गुप्ता
असिस्टेंट प्रोफेसर–प्राचीन इतिहास, जगत तारन गर्ल्स डिग्री कालेज, प्रयागराज (उ0प्र0), भारत

Received- 10.11.2018, Revised- 16.11.2018, Accepted - 19.11.2018 E-mail: nirmalagupta.bhu123@gmail.com

सारांश : ***बौद्ध कालीन समाज का अध्ययन करने से प्रतीत होता है कि इस काल तक आते–आते अन्त्यजों की आर्थिक स्थिति की सुदृढ़ता का पता चलता है, जो व्यक्ति जिस वर्ग में जन्म लेता था वह अपने वर्ग में वंशानुगत रूप से कार्य करता हुआ दक्षता को प्राप्त करता था। मिलिन्दपन्हों से पता चलता है कि लोहा, सीसा, टिन, तांबा आदि की वस्तुएं बनाने वाले पृथक् – पृथक् वर्ग में थे।***

कुंजीभूत शब्द– सुदृढ़ता, वंशानुगत रूप, कृषि अर्थ–व्यवस्था, उन्नतिशील व्यापार, वस्तु–उत्पादन ।

बौद्ध ग्रन्थों के आधार पर अन्त्यजों एवं उनके कार्यों के कुछ मूल बिन्दुओं पर विचार करना आवश्यक प्रतीत होता है। अन्त्यज वर्ग के शिल्पी मौर्य पूर्व काल की कृषि अर्थ–व्यवस्था के बहुत महत्वपूर्ण अंग थे। धातु शिल्प न केवल बढ़ई और लुहारों के लिए कुल्हाड़ी, आरा, हथौड़ा और छेनी बनाते थे [1] बल्कि खेती के लिए हल, कुदाल और इसी तरह के अन्य औजार भी तैयार करते थे। जिससे किसान शहर के निवासियों के लिए अतिरिक्त खाद्यान उपजाने में समर्थ हो सके। खुदाईयों से पता चलता है कि बौद्ध कालीन अन्त्यज पूर्वी उत्तर प्रदेश और बिहार में लोहे के हथियारों का प्रयोग पहले पहल बड़े पैमाने पर करने लगे थे। पालि ग्रन्थों में लोहे के बने फाल की चर्चा है, जिससे खेती होती थी।

दक्षिण बिहार में लोहे की सबसे बड़ी खानें हैं, जिसके कारण लोहे के काम में शिल्पियों की बहुत जरूरत थी। नगर जीवन[2] और उन्नतिशील व्यापार एवं वाणिज्य, जो उत्तर पूर्व भारत में पहली बार इस युग में दिखाई पड़ता है। शिल्पियों द्वारा प्रचुर वस्तु–उत्पादन के बिना सम्भव नहीं हो पाते हैं। मुख्य नगरों में शिल्पियों का संघ होता था और उनके प्रधान का राजा से विशेष संबंध था। कुछ शिल्पी तो राजा के घरेलू कार्यों में लगे रहते थे और इस तरह उन्हें राजा का संरक्षण प्राप्त था। पाणिनी व्याकरण के अनुसार इन्हें राज शिल्प कहा जाता था, इनमें राजनापित और राज कुलाल (कुम्भकार) का विशेष रूप से उल्लेख हुआ है।[3] बौद्ध ग्रन्थों में अठ्ठारह प्रकार के प्रमुख व्यवसायों का उल्लेख हुआ है, इन व्यवसायों की संख्या इससे कहीं अधिक थी।

इस युग में व्यावसायिक अन्त्यज जातियां थी, जिनका अपना अलग–अलग व्यवसाय एवं उद्योग था। इस युग में व्यवसाय पैत्रिक आधार पर होते थे, पुत्र अपने पिता के व्यवसाय में कुशल होने का प्रयास करता था। वंशानुगत प्रवृत्ति के फलस्वरूप शिल्प के स्थायीकरण की भावना पायी जाती है। नगरों बाजारों और गलियों का नाम व्यवसायों के आधार पर रखे जाते थे और व्यवसायों से सम्बद्ध भी स्वतंत्र नियम बन रहे थे। बौद्ध ग्रन्थों में वस्तु, काष्ठ, मिट्टी के बर्तन, पत्थर, चमड़े हाथी दाँत गृह निर्माण और तैल आदि व्यावसायिक अन्त्यज जातियों का उल्लेख हुआ है।

बौद्ध साहित्य में लकड़ी का काम करने वाले वर्ग बढ़ई (वड्ढकि) का समुचित ज्ञान होता है। कुछ बढ़ई वाराणसी के निकट आकर बसें थे ऐसा उल्लेख एक जातक में मिलता है।[4] वे नावों और पोतों का भी निर्माण करते थे। ऐसे–ऐसे विशाल जहाज बनायें जाते थे जिसमें एक हजार यात्री बैठ सकते थे।

धातु का काम करने वाले अन्त्यज अपनी कला में दक्ष और प्रवीण थे। वे धातु को गलाकर तौल के लिए लोहे की माप बनाते थे। मिलिन्दपंहों से पता चलता है कि लोहा सोना, शीशा टिन, तांबा आदि की वस्तुएं बनाने वाले पृथक–पृथक वर्ग में थे।[5] धातु की विभिन्न वस्तुएं बनाने वाले अन्त्यज अत्यन्त सुन्दर सुडौल तीव्र और आकर्षक वस्तुएं बनाता था।[6] हल, फावड़ा, कुदाल, हँसिया आदि विभिन्न औजार अन्त्यजों के द्वारा खेती के लिए बनाये जाते थे। स्वर्णकार विभिन्न प्रकार के आभूषणों का निर्माण करता था, जो अत्यन्त कलात्मक और आकर्षक ढंग से बनाये जाते थे। स्त्री पुरूष सभी इस युग में अलंकार प्रिय थे।[7]

कपास रेशम और ऊन वस्त्र का व्यवसाय भी इस युग में प्रचलित था। बौद्ध युग में वस्त्रोंद्योग का अधिक विकास हुआ। इस युग में स्त्री–पुरुष के अपने परिधान बनते थे। दीघ निकाय में सूती (काप्पासिक) रेशमी (कौशेय), ऊनी (और्ण) आदि अनेक प्रकार के परिधानों का उल्लेख हुआ है। जिससे उस युग के तन्तुवाय की कला और कल्पना का आभास होता है। ऐसे भी बुनकर होते थे जो पहले से लोगों की मांगों के अनुसार वस्त्र–निर्माण करते थे। साधारणतया अन्त्यज सूती वस्त्रों का प्रयोग ही करते थे। स्त्रियां घर में सूत कातती थी वस्त्र बुनने का कार्य तन्तुवाय (जुलाहें) करते थे।

चर्मकार वर्ग के अन्त्यज भी उस समय अधिक संख्या में रहते थे जो चमड़े की रस्सियां, जूते, छाते आदि बनाते थे।[8] उस समय हाथी दांत की विभिन्न कलात्मक वस्तुएं बनाने वालों का वर्ग भी समाज में था। इस प्रकार के उद्योग का केन्द्र काशी था उस काल में हाथी दांत के विभिन्न आभूषण, खिलौने, घरेलू वस्तुएं आदि निर्मित की जाती थीं। हाथी दांत के उद्योग को 'दंत वाणिज्य' भी कहते थे।

इस युग में पत्थर तोड़ने वालों का 'पाषाण कुट्टक' कहते थे जो पत्थर की कला में दक्ष होते थे। पत्थर के कलात्मक स्तंभ आधार दीवारें आदि बनायी जाती थी उस समय तूलिकाकार भी होते थे जो विभिन्न रंगों का सामंजस्य स्थापित कर स्थापत्य व वास्तु कला को अनुपम सौन्दर्य प्रदान करते थे। चित्रकार सुन्दर चित्र बनाता था। मस्तिष्क में आयी हुई भावनों के आधार पर वह सुन्दर और आकर्षक चित्र बना सकने में सफल होता था। अनेक प्रकार के रंगों के वस्त्रों को रंगने वाले अन्त्यजों का उल्लेख बौद्ध साहित्य में हुआ है रंगने के कपड़ों को अत्यन्त स्वच्छ और धवल कर लिया जाता था। वस्त्रों को रंगने के अलावा बच्चों के खिलौने और गुड़ियों को भी रंगा जाता था। कपड़ा साफ करने के लिए 'सोडा' का प्रयोग होता था।

मांस, शराब, मछली, मिट्टी के व्यवसायी नगर में अपने–अपने क्षेत्र में अन्त्यज वर्गीय व्यवसाय करते थे बांस की टोकरियां आदि बनाने का कार्य नलकार करते थे।

ज्योतिष और वैद्यों का अपना स्वतंत्र प्रतिष्ठित व्यवसाय था। विनयपिटक में जीवक नाम के वैद्य का उल्लेख किया गया है। लेखक, गंधर्व, नर्तक, हत्याचरिम, धनुगृह, लवण, संग्रहक, नाई सिलाई करने वाले, घास काटने वाले आदि अनेक वर्ग थे जो अपने अपने कार्य संपादित करते थे। इसकी पुष्टि बाद की एक जातक कथा से भी होती है जिसमें राज कुंभकार और राजमालाकार की चर्चा आई है।[9] सेट्ठियों और गृहपतियों से भी कुछ शिल्पी जुड़े हुए थे। इससे पता चलता है कि एक सेट्ठी का अपना दर्जी (तुन्नकार) था। जो उसके संरक्षण के रहता था और उसके घर का काम करता था।[10] गहपति के बुनकरों का भी उल्लेख हुआ है जो उसके लिए कपड़ा बुनने थे,[11] किन्तु अधिकांश शिल्पी प्रायः ऐसे मालिकों से सम्बद्ध नहीं थे, स्वतंत्र शिल्पियों के दृष्टांत रूप में बढ़इयों[12] और लोहारों[13] के गांवों और नगरों में रहने वाले शिल्पियों का उदाहरण प्रस्तुत किया जा सकता है। संभवतया राजा शिल्पियों के प्रमुखको प्रश्रय देकर उनके माध्यम से शिल्पी ग्रामों पर अपना थोड़ा बहुत नियंत्रण रखता था। जैसे, हजार लोहारों के ग्राम का जेत्थक (प्रधान) राजा का प्रिय पात्र कहा गया है। गांवों में बिखरे हुए शिल्पी परिवार जो कृषकों की आवश्यकताओं की पूर्ति करते थे, इस तरह के नियंत्रण में नहीं थे। पाणिनी ने उन्हें ग्राम शिल्पी बताया है[14] पाणिनी के अनुसार बढ़ई दो प्रकार के होते थे, ग्रामतक्ष, जो गांवों में अपने ग्राहक के घर जाकर रोजाना मजदूरी लेकर काम करते थे और कौटतक्ष जो, अपने घर पर ही रहकर काम करते थे।[15] वह स्वतंत्र शिल्पी था जो किसी का काम स्वीकार करके उसके हाथ बंधता नहीं था।[16] एक जातक गाथा में किसी भ्रमणशील लुहार का प्रसंग आया है जो कहीं भी बुलाये जाने पर अपनी भाथी साथ लेकर चलता था।[17] शिल्पियों के अपने औजार होते थे और कुछ मामलों में तो उन्हें निर्माण सामग्री प्राप्त करने की स्वतंत्रता थी। हमें ऐसे ब्राह्मण बढ़ई का पता चलता है। जो जंगल से लकड़ी लाता था और गाड़ियां बनाकर अपना जीविकोपार्जन करता था।[18] कुम्भकार के साथ भी यहीं बात रही होगी जिसे मिट्टी और जलावन मुत मिल जाते थे। बुनकरों और धातु कर्म करने वालों के साथ यह स्थिति नहीं थी। लेकिन ये शिल्पी जिन लोगों की सेवा करते थे, वे उनके मालिक नहीं होते थे जैसी स्थिति ग्रीस और रोम में थी। वहां दासों से शिल्पी का काम लिया जाता था।[19] जो अपनी मालिक की सेवा करते थे। सामान्य रूप में शिल्पियों पर राज्य का नियंत्रण उन पर बेगार लगाने तक सीमित था। कर देने के बदले महीने में उन्हें एक दिन राजा का काम करना पड़ता था।[20]

सामाजिक दृढ़ता तथा श्रम–विभाजन के सिद्धान्त पर समाज में अन्त्यज वर्गों के व्यवसाय एवं कर्तव्य निर्धारित किए गए थे, परन्तु आवश्यकता पड़ने पर विभिन्न वर्गवालों ने अपने वर्ग के अनुरूप न करने वाले व्यवसायों को भी किया, परन्तु उनके वर्ग तथा जाति में अन्तर नहीं आया, कुछ ऐसे उदाहरण जातकों में पाए जाते हैं, जहां अपने वर्ग के प्रतिकूल व्यवसायों को मनुष्यों द्वारा किया गया–

1. एक क्षत्रिय राजकुमार को उसकी रानी छोड़कर चली गई थी। उसने अपनी रानी के प्रेम में अपने ससुराल कुल में जाकर कुम्हार, बँसफोड़ा, माली का काम किया।[21] परन्तु कालान्तर में उसकी जाति में कोई अन्तर नहीं आया।
2. ब्राह्मण पुरोहित का पुत्र ज्योतिपाल धनुर्विद्या में पारंगत होकर प्रमुख धनुर्धारी के रूप में राजा की सेवा में रहता था।[22]
3. धनुर्विद्या पारंगत तरूण विद्वान ब्राह्मण एक जुलाहे को दरबार में धनुषधारी के पद पर नियुक्त कराकर स्वयं उसका सहायक बना। बाद में स्वयं आदर से धर्नुधारी के पद पर नियुक्त हुआ।[23]
4. एक ब्राह्मण तरूण ने साँप का तमाशा दिखाकर सँपेरे का कार्य करते हुए एक हजार कार्षापण अर्जित किए।[24]
5. ब्राह्मण कृषि कार्य व व्यापार भी करते थे।[25] धर्मशास्त्रियों ने कुछ विशिष्ट अवस्थाओं में कृषि व व्यापार करने की आज्ञा ब्राह्मणों को दी है। वैसे मनु0 (10/92) ने निर्देश दिया है कि

ब्राह्मण माँस, लाख तथा नमक बेंचने से उसी क्षण पापी हो जाता है, तीन दिन तक दूध बेचने से अन्त्यज की स्थिति को प्राप्त हो जाता है।

6. ब्राह्मण बढ़ई का कर्म करते हुए भी जीवन–यापन करते थे। ब्राह्मण अपने पुत्र सोमदत्त के साथ जंगल में शिकार कर माँस बेंचकर जीविका चलाता था। धनी ब्राह्मण 500 गाड़ियाँ रखने वाला व्यापारी था।[26]

7. सेठ–पुत्र ने पण्डित व अमात्य होते हुए भी दर्जी तथा कुम्हार का कार्य किया।[27] इस प्रकार उच्च वर्णों ने अन्त्यज वर्गों के व्यवसाय किए, परन्तु फिर भी वे अपने वर्ण में प्रतिपादित रहे।

सम्पूर्ण जाति व्यवस्था का निष्पक्ष अध्ययन करने पर इस निर्णय पर पहुँचा जा सकता है कि समाज के उच्चादर्श एवं नैतिक मूल्य समाप्त हो चुके थे। समाज का विशाल जनसमुदाय अधिकारों से वंचित था। उनके अधिकारों पर नियंत्रण लगा हुआ था। समाज में ऊँच–नीच एवं अस्पृश्यता की भावना परिव्याप्त थी। उच्च वर्ण को निम्न वर्ण की तुलना में न्याय व्यवस्था में दण्ड कम मिलता था। रमेश चंद्र मजूमदार के अनुसार सभी प्रकार के मुकदमों की व्यवस्था जाति के अनुसार चलती थी, जिसका बुरा प्रभाव अन्त्यज वर्गों पर पड़ता था। इस तरह समाज के कुछ वर्गों में हीनता की भावना भर गई थी। इस वर्ग के समाज में विरक्त रहने के कारण सामाजिक विकास में बाधा उत्पन्न होती रहती थी।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. जातक, भाग–5, 451.
2. दीघ निकाय द्वितीय, 147.
3. पाणिनी व्याकरण की वृत्ति छठां 2.63. अष्टाध्यायी, निर्णय सागर प्रेस, 1929.
4. जातक, 2–18.
5. मिलिन्दपंहों, 5–4 पृ0 323.
6. जातक, 6–189.
7. जातक, 5–282.
8. जातक, 5–45.
9. जातक, 5, 290, 292.
10. जातक, छठा, 38.
11. जातक, तृतीय, 258–9.
12. जातक, चतुर्थ, 159.
13. जातक प्रथम, 281.
14. जातक, तृतीय 281.
15. वैदिक इन्डेक्स, ए.ए. मैकडोनल, ए.बी. कीथ, अनुवादक रामकुमार राय, विद्या भवन राष्ट्रभाषा ग्रन्थमाला–चौखम्भा, विद्याभवन, वाराणसी, 1962, पृष्ठ संख्या–265.
16. पाणिनी, व्याकरण पंचम, 4.95.
17. पाणिनी व्याकरण, भाष्य पंचम 4.95.
18. जातक, छठा, 189.
19. जातक, चतुर्थ, 207.
20. गौतम, ध0सू0, 10.31.
21. जातक पंचम, पृष्ठ, 290–93.
22. वही, पृष्ठ, 128–30.
23. जातक, प्रथम, पृ0, 356.
24. जातक, पंचम, पृ0, 457.
25. जातक, प्रथम, पृ0, 495–96, चतुर्थ पृ0, 167, 276.
26. जातक, चतुर्थ, पृ0, 207, पंचम पृ0, 471, षष्ठ, पृ0, 170.
27. जातक, षष्ठ, पृ0, 366–67.

*****